QUARTERLY NEWSLETTER OF ARYA SAMAJ INDIRANAGAR

Swami Dayananda Saraswati

Vaidic Dhwani

VOL 8 # 3

EDITION 30

JULY-SEPTEMBER 2017

CONTENTS

Editorial 2
Pravachans 2
व्यष्टि-निर्माण : स्वर्णिम सूत्र 3
Mindfulness 5
Workshops 6
मोक्षस्वरूप-ईश्वर को प्राप्त करने के उपाय 7
Gayatri Y ajna 2017 10
Childrens Program 11
सफर – देह भाव से ... ...आत्म भाव का 12
Appeal for Donation towards New Arya Samaj Building 14

Arya Samaj For Vaidic Dharma

कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

Krinvanto Vishvam Aryam

Make this world noble

मन की दिव्य शक्ति

वयं सोम व्रते तव मनस्तनूषु बिभ्रतः ।
प्रजावन्तः सचेमहि ॥

– ऋग्वेद १०।५७।६

विनय – हे सोम ! तुम्हारा दिया हुआ, तुम्हारी महाशक्ति का अंशभूत मन हमारे शरीरों में विद्यमान है। इस मन का–इस तुम्हारी अमूल देन का हमें गर्व है। इस मन के कारण ही हम मनुष्य हैं। इस मननशक्ति के कारण ही हम पशुओं से ऊँचे हुए हैं। तो क्या अपने शरीरों में मन–जैसी प्रबल शक्ति को धारण किये हुए भी हम लोग तुम्हारे व्रत में न रह सकेंगे ? बेशक तुम्हारे व्रत का पालन करना बड़ा कठिन है। तुमने जगत् में जो उन्नति के नियम बनाये हैं, ठीक उनके अनुसार चलना बड़ा दुःसाध्य है, पर जहाँ तुमने ये कठिन नियम बनाये हैं वहाँ तुमने ही हममें मन की अतुल शक्ति भी दी है, अतः हमारा दृढ़ निश्चय है कि हम अपनी मनःशक्ति के प्रयोग द्वारा सदा तुम्हारे व्रत में ही रहेंगे–कभी इसको भङ्ग न करेंगे–कठिन से कठिन प्रलोभन व विपत्ति के समय में भी मनःशक्ति द्वारा व्रत में स्थिर रहेंगे।

पर यह सब व्रतपालन किस लिए है ? यह तुम्हारी सेवा के लिए है। यह तुम्हारा दिया मन इसी काम के लिए है। हम चाहते हैं कि केवल यह हमारा मन ही नहीं, किन्तु हमारे मन की प्रजा भी तुम्हारी सेवा में ही काम आवे। मन में जो एक रचना–शक्ति है, उस द्वारा प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह कुछ रचना कर जावे, कुछ निर्माण कर जावे। यह रचना ही मन की प्रजा है। यदि हम, हे सोम ! सर्वथा तुम्हारे व्रत में होंगे तो हमारी यह रचना (प्रजा) भी निःसन्देह तुम्हारी सेवा के लिए ही होगी–इसी में व्यय होगी। एवं, हम और हमारी प्रजा सदा तुम्हारी सेवा में अपना जीवन बिता देवें। अब यही सङ्कल्प है, यही इच्छा है, यही प्रार्थना है।

O blissful Lord, regaining spirit in our bodies, may we, having good progeny, abide by your laws.

– Swami Satya Prakash Saraswati
Satyakam Vidyalankar

Editorial

God pervades every object of this universe, hence the human body too.

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं
न पश्यति ।

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न
जीर्यति ॥

– अथर्व० १०।८।३२

This mantra of Atharvaveda says that He is too close to be visible to the human eye. As the norm is that the human eye cannot see itself (or its own pupil). Also, God being shapeless, cannot be seen with the physical eye. So, if we want to see Him, He can be seen through His creation i.e. "उस की कृति को देखो". He has created this universe and He has created the Vedas - the source of all knowledge. Things created by man lose their lustre after sometime but God's creation retains its charm forever.

Human life could be compared to a drama and the world to a stage as also said by William Shakespeare in his play "As You Like It". Human beings when born, come to this stage of the world and their departure could be compared to their death. And this drama goes on and on and we never get bored of it. The reason being that its creator is immortal and so is His creation. The Vedas are such a beautiful source of knowledge that they don't end even with the end of universe as is clearly conveyed by the above mantra.

Neither does this knowledge get destroyed nor does it get old or outdated. And this flow of knowledge continues reflecting His presence.

– Harsh Chawla

Pravachans

Sh Ravi Bhatnagar ji

Dr Arun Dev Sharma ji

Smt Usha Shastri ji

Sh Anil Arya ji gave a presentation on the topic - "Manusmriti ka virodh kyon"

Smt Nidhi Chawla gave a presentation on Mental Wellbeing

व्यष्टि-निर्माण : स्वर्णिम सूत्र

(आर्य समाज के प्रथम पाँच नियम)

– रवि भटनागर

आर्य समाज के विषय में यदि एक वाक्य में बतलाना हो तो हम कहेंगे कि आर्य समाज एक ईश्वर विश्वासी आस्तिक संगठन है जो व्यक्तिगत, पारिवारिक, धार्मिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय चेतना जागृत करने हेतु स्थापित किया गया । इसका उद्देश्य प्राचीन वैदिक संस्कृति की पुनः प्रतिष्ठा तथा उसके आधार पर विश्वशान्ति स्थापित करना है ।

किसी संगठन के विषय में जानकारी प्राप्त करने के दो साधन हैं –

१. उस संगठन के संस्थापक का जीवन चरित्र तथा उसके जीवन मूल्य ।

२. उस संगठन के मूल उद्देश्य, मान्यताएँ, नियम, सिद्धान्त ।

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती के सम्बन्ध में जन सामान्य की धारणा उनके जीवन की एक घटना से स्पष्ट होती है ।

स्वामी श्रद्धानन्द उस समय एक स्वच्छन्द प्रकृति के स्वेच्छाचारी नवयुवक मुंशीराम थे । जिनके पिता बरेली (उ0प्र) में एक पुलिस अधिकारी के रूप में पद स्थापित थे । जब दयानन्द का बरेली आगमन हुआ । आम जनता में यह धारणा थी – दयानन्द एक वेदशास्त्रों का ज्ञाता, नास्तिक, जादूगर संन्यासी है । दूसरी ओर मुंशीराम की धारणा थी कि एक संस्कृत का जानकार तथा अंग्रेजी न जानने वाला गेरुआ वस्त्रधारी को क्या जानकारी होगी किन्तु महर्षि दयानन्द के एक प्रवचन को सुनकर मुंशीराम मन्त्रमुग्ध हो गया तथा उसके पश्चात् दयानन्द के प्रवचनों में सबसे पहले पहुँचकर अग्रिम पंक्ति में बैठकर दत्तचित्त होकर प्रवचन सुनता । यही युवक आगे चलकर दयानन्द का सबसे बड़ा शिष्य क्रान्तिकारी, स्वतंत्रता सेनानी, समाज सुधारक तथा गुरुकुल कांगड़ी का संस्थापक स्वामी श्रद्धानन्द बना ।

इसके साथ ही उस समय कुछ अंशों में तथा आज भी आर्य समाज के विषय में आम धारणा है कि आर्य समाज ईश्वर को नहीं मानता । बड़े-बड़े मंचों पर दयानन्द को राष्ट्रीय तथा सामाजिक महापुरुष के रूप में तथा आर्य समाज को एक राष्ट्रीय तथा समाज सुधारक संस्था के रूप में सराहा जाता है । किन्तु धार्मिक क्षेत्र में चारों ओर मौन सुनाई देता है ।

मैं अपने विद्या अध्ययन के काल में सायं व प्रातःकाल अपने मित्रों के साथ भ्रमण करने जाता था । एक दिन एक मित्र ने मुझसे कहा कि तुम तो आर्य समाजी हो, ईश्वर को नहीं मानते, मैं मन्दिर में भगवान् के दर्शन करके आता हूँ । मेरी यहाँ प्रतीक्षा करो । मेरे मित्र मन्दिर में एक मूर्त्ति के आगे हाथ जोड़कर तथा आँखें बन्द करके खड़े हो गये । कुछ क्षण बाद परिक्रमा करके वापिस लौट आये । मैंने कहा दर्शन तो आँख खोलकर होते हैं । आपने तो आँखें बन्द कर रखी थी । मैंने उनसे कहा कि मैं ईश्वर में विश्वास करता हूँ, मूर्ति में नहीं । दयानन्द का प्रमुख रूप तो एक ईश्वरभक्त आस्तिक, धार्मिक महापुरुष के रूप में है ।

महर्षि दयानन्द ने जब आर्य समाज की स्थापना करी तब अपने जीवन के समग्र चिंतन और मनन का निचोड़ आर्य समाज के इन दस नियमों में प्रस्तुत किया । दयानन्द सबसे पहले एक धार्मिक महापुरुष थे तथा ईश्वर के परमभक्त थे । इसी कारण आर्य समाज के पहले नियम में ही ईश्वर की वास्तविक व्याख्या करी या यूँ कहूँ कि आर्य समाज का पहला नियम ईश्वर की वास्तविक व सटीक परिभाषा है – "सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं, उन सब का आदिमूल परमेश्वर है ।"

आर्य समाज का पहला नियम वास्तव में ईश्वर विश्वास को पुष्ट करता है । आर्य समाज का दूसरा नियम ईश्वर के गुणों का उल्लेख करता है – "ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार,

सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है ।" ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव के आधार पर १०० नामों की व्याख्या सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने की है तथा ईश्वर का प्रमुख तथा निजी नाम 'ओ३म्' बतलाया है ।

किसी रचना से रचनाकार की पुष्टि होती है । किसी मिट्टी के घड़े को देखकर कुम्हार के अस्तित्त्व की पुष्टि होती है । इसी प्रकार जगत् को देखकर जगत् नियन्ता की पुष्टि होती है । मनुष्य के जीवन के लक्ष्य मोक्ष के द्वारा भी ईश्वर का अस्तित्त्व सिद्ध होता है । ईश्वर को मानने वालों की दो स्थितियाँ होती हैं, एक – आर्य समाज ईश्वर के जो गुण हैं, ईश्वर को वैसा ही मानता है । दूसरी स्थिति ईश्वर को जैसा मानते हैं, जरुरी नहीं कि ईश्वर वैसा हो ! आर्य समाज का दूसरा नियम आस्तिकता को पुष्ट करता है ।

ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् व सर्वज्ञ है । सर्वशक्तिमान् होने के कारण दण्ड देने में पूर्ण समर्थ है, वह कर्माध्यक्ष है । जीवमात्र को कर्मफल प्रदान करता है । न्यायकारी है तो यथोचित फल देना उसका स्वभाव है । दयालु है तो सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्य को वेद के रूप में आचार संहिता प्रदान करी । यह प्रभु की दयालुता है । आज की परिस्थितियों में आर्य समाज के दूसरे नियम की प्रासंगिकता इससे अधिक और कुछ नहीं हो सकती ।

आर्य समाज का तीसरा नियम वेद के नित्य होने, उसके महत्त्व और उपयोग को व्यक्त करता है । ईश्वर नित्य है तो उसका ज्ञान भी नित्य ही होगा । जीव जन्तु पशु पक्षी भोग योनियाँ हैं, यें तो जीवन यापन के लिये आवश्यक ज्ञान प्राप्त करके ही पैदा होते हैं । जलचर पैदा होते ही तैरने लगते हैं किन्तु मनुष्य को सिखाना पड़ता है, उसको चलना फिरना, खाना पीना बोलना सिखाना पड़ता है अर्थात् मनुष्य को ज्ञान की आवश्यकता है । मनुष्य कर्मयोनि व भोगयोनि दोनों है तथा उसका लक्ष्य मोक्ष है । तब उसको नित्य ज्ञान की आवश्यकता है । वेदों में ज्ञान, कर्म, उपासना तथा विज्ञान का ही प्रमुख रूप से वर्णन मिलता है । जो मनुष्य के जीवन यापन तथा परम लक्ष्य की प्राप्ति हेतु आवश्यक है । इसी कारण महर्षि दयानन्द ने वेदों के सुदृढ़ आधार को पुनः स्वीकार किया और स्व संस्थापित आर्य समाज के नियमों का निर्धारण करते समय वेद विषयक नियम को इस प्रकार परिभाषित किया – "वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है । वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है ।

एक सज्जन ने टिप्पणी करी कि सुनना–सुनाना तथा पढ़ना–पढ़ाना से करना–कराना ज्यादा महत्त्वपूर्ण है । जिसका नियम में जिक्र नहीं है । वास्तव में यह महत्त्वपूर्ण है । इसी कारण करने–कराने को अधिक महत्त्व प्रदान करते हुए आर्य समाज का चौथा नियम सूत्रबद्ध किया – "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए ।" सत्य को जानने–मानने के लिये जहाँ तीसरे नियम के पालन करने का उपदेश दिया वहीं जीवन में सत्य को ग्रहण करने के लिये चौथा नियम क्रियान्वयन हेतु प्रदान किया । तीसरा व चौथा नियम सत्य का ज्ञान प्राप्त करके सत्य विचार धारण कर सत्य को आचरण में लाने के लिए निर्देश है ।

आज जिससे बात करिये यही सुनाई देता है कि इस युग में अधर्म का साम्राज्य है । स्वार्थवृत्ति, दुराचार, भ्रष्टाचार, उत्कोच, पाखण्ड, लोभ, मोह व अहंकार जीवन के सामान्य अंग बन चुके हैं जबकि उसके विपरीत महर्षि दयानन्द की कल्पना के जगत् में सभी का वांछनीय आधार धर्म व सत्य था और इसी को स्थापित करना उनका महान् संकल्प था । इसी आधार पर उन्होंने आर्यों को 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का उद्घोष दिया ।

जब १९६५ में भारत पाक युद्ध चल रहा था तब काश्मीर के अग्रिम मोर्चे पर जवानों का मनोबल बढ़ाने के लिये सन्त विनोबा भावे गये हुये थे । वहाँ सैनिकों के बीच कथित धर्म निरपेक्षता देख वह अभीभूत हो गये । सैनिकों का खाना पीना, खेलना कूदना, उठना–बैठना सभी कुछ बिना किसी साम्प्रदायिक भेदभाव के साथ था । यहाँ तक कि युद्ध के दौरान मृत्यु के मुख में भी सभी बिना किसी भेदभाव के कन्धे से कन्धा मिलाकर साथ–साथ जा रहे थे । उनकी इस एकता को देखकर इकबाल की पंक्तियाँ याद आ रही थी "मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना । हिन्दी हैं हम वतन हैं हिन्दोस्तान हमारा ।।" किन्तु सायंकाल को ही दूसरा दृश्य विनोबा देखते हैं जब प्रार्थना की घण्टी बजी तो हिन्दू मन्दिर की ओर, मुसलमान मस्जिद की ओर, ईसाई गिरजाघर की ओर तथा सिख गुरुद्वारे में जा घुसे । सर्वधर्म समभाव का सपना चूर–चूर हो गया । किसी शायर के अनुसार – "कोई शेख बन गया कोई बन गया बिरहमन । हर शख्स आदमी था तेरी बन्दगी से पहले ।।" इस प्रकार धर्म की व्याख्या करते हुये महर्षि दयानन्द ने आर्य समाज का पाँचवा नियम बनाया – "सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिएँ ।"

इस प्रकार आर्य समाज के दस नियमों में से पाँच नियमों में निहित भावों को इस प्रकार हृदयंगम किया जा सकता है –

१. ईश्वर अस्तित्त्व,
२. ईश्वरोपासना,
३. वेद निष्ठा,
४. सत्य निष्ठा,
५. धर्माचरण ।

दस नियमों में से पाँच नियमों में व्यष्टि और शेष पाँच में समष्टि के निर्माण की समस्त योजना निहित है । प्रथम पाँच नियमों का पालन करके हम अपने लिये व्यक्तिगत मर्यादा को स्थापित कर सकते हैं । अन्ततोगत्वा प्रथम पाँच नियमों द्वारा कोई अपना पूर्ण आत्मनिर्माण करके शेष पाँच नियमों के आधार पर श्रेष्ठतम तथा समुन्नत समाज के निर्माण करने का अधिकारी होगा ।

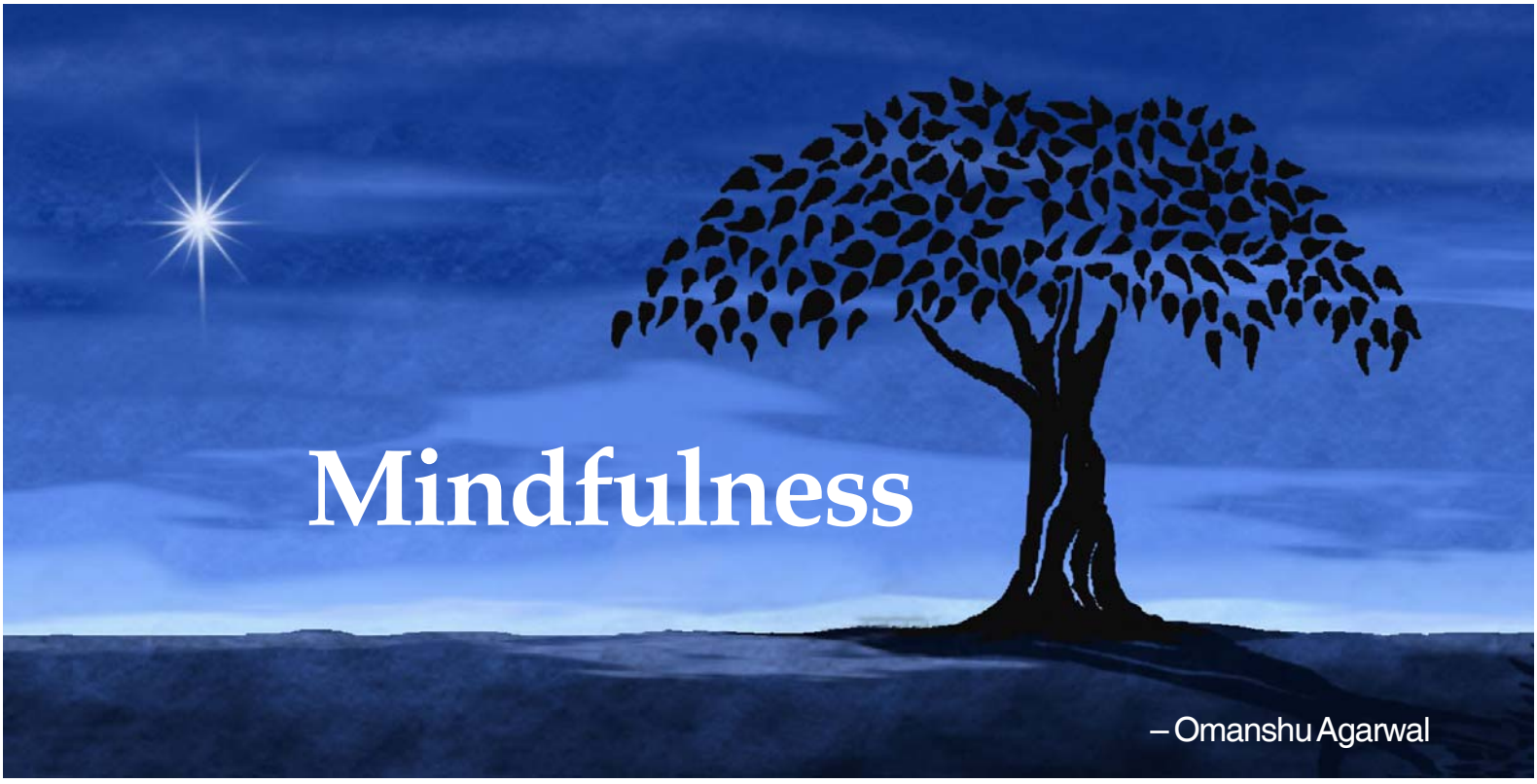

Mindfulness

– Omanshu Agarwal

Nature has created us to be blissful. Our intrinsic nature is to be happy. All beings around us are so much full of joy. Look at the trees, the birds or the rivers. They are all in utter bliss.

But amongst all of nature's creations, only Man has somehow managed to deviate from the natural & cling to the unnatural and in the process lose his happiness.

Trees are simply happy because they cannot be unhappy. Their happiness is not their freedom - they have to be happy. They don't know how to be unhappy; there is no alternative. Their happiness is unconscious or natural. On the other hand, Man has consciousness. Sadly, we have used this consciousness to be only unhappy.

To be alive and walk on earth is a miracle in itself and yet most of us are running as if there were some better place to get to. There is beauty calling us every day, every hour, but we are rarely in a position to listen.

The basic condition for us to be able to listen to this call of this beauty is silence. Only if we have silence within ourselves can we hear this call. But we are so full of noise that we miss this silence and are unable to listen to this call.

Silence is needed just as much as we need air, just as much as plants need light. If our minds are crowded with words and thoughts, there is no space for us.

So what do we do in order that we become one with silence?

Mindfulness is the practice that quiets the noise inside us. Without mindfulness, we can be pulled away by many things. Sometimes we are pulled away by regrets or sorrows concerning the past. We revisit old memories, only to suffer again & again the pain we have already experienced. We are caught in the prison of the past & ultimately we start living in that very prison. We may also get pulled away by the future. A person who is fearful or anxious about the future is trapped just as much as one bound by the past. They are two sides of the same coin.

Mindfulness is the bell that reminds us to stop and silently listen. We can even use an actual bell to help us remind not to get carried away by the noise inside or around us. When we hear the bell we stop and make way for silence. A simple thing as breathing in & out mindfully, by paying attention only to the breath, we can quiet all the noise within us.

Mindfulness simply means being mindful of something. When we drink our tea mindfully, it's called mindfulness of drinking. When we breathe mindfully, its mindfulness of breathing & so on.

Mindfulness should be enjoyable, not a work or an effort. We cannot think about mindfulness and achieve it too. Do we make an effort to breathe in? No, to breathe in, we just breathe in. Similarly, do we have to make an effort to enjoy a sunrise? No, we just enjoy it. The moment we start thinking about it, we miss it. By not thinking, we see it. We experience it. It's like a blind man thinking about light, how much ever he thinks he will not be able to know light. If you have eyes, you don't think about light, you see it!

Last year I was in a Meditation Centre near Kodaikanal. There, with the help of the facilitator, we used to practice a kind of silence called 'Sound Of No Sound Silence'. In this beautiful practice, If we are talking, we are only talking. If we are drinking tea or cleaning the utensils, we did just these things. We were naturally unaware of any other activity than the one being performed. In fact, we were unaware of any activity being performed! In this way, we are free to hear the deepest call of our hearts.

Practicing silence to empty all kinds of noise within you is a very easy practice. In silence, you can walk, you can sit, you can enjoy your meal. When you have that kind of silence, you have enough freedom to enjoy being alive and to appreciate all the wonders of life. You have the capacity to be there, alive.

Of course many people cannot allow themselves the time to sit and do nothing but breathe. They consider it to be too uneconomical or luxurious! People say 'Time Is Money.' But time is much more than money. Time is life. Therefore we need to see that a simple practice of sitting quietly on a regular basis can be profoundly healing. Stopping and sitting is a good way to focus on mindful breathing.

Thich Nhat Hanh, a vietnamese monk, summarizes it beautifully in his book 'Silence':

"All the wonders of life are already here. They are calling you. If you can listen to them, you will be able to stop running. What you need, what we all need, is silence. Stop the noise in your mind in order for the wondrous sounds of life to be heard."

Children's Psychosocial Workshop

A 3 day experiential workshop was organized in Arya Samaj on 8th, 9th and 10th May 2017 and was conducted by Smt Nidhi Chawla. The workshop was focused on developing social, emotional and thinking skills for children. Some glimpses from the same

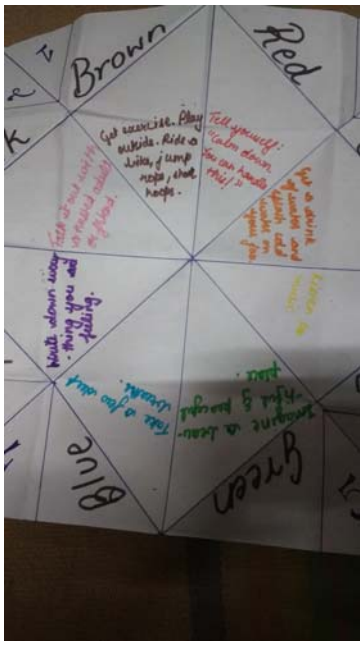

मोक्ष-स्वरूप ईश्वर को प्राप्त करने के उपाय

– डॉ० अरुण देव शर्मा

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष; ये मनुष्य-जीवन के चार मुख्य प्रयोजन हैं । प्रायः लोग इनका सही अर्थ नहीं जानते । धर्म को लोग सम्प्रदाय, अर्थ को धन, काम को भोग और मोक्ष को स्थान-विशेष मानते हैं । किन्तु इनका ऐसा अर्थ नहीं है । महर्षि दयानन्द ने इनका जो अर्थ किया है वह बहुत उत्तम है – "धर्म – जो सत्य, न्याय का आचरण करना है, अर्थ – जो धर्म से पदार्थों की प्राप्ति करना है, काम – जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और मोक्ष – जो सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द में रहना है, इन चार पदार्थों की सिद्धि हम को शीघ्र प्राप्त हो ।" – पञ्चमहायज्ञविधिः

धर्म का अर्थ है – सब प्राणियों व मनुष्यों के साथ सत्य और न्याय का व्यवहार करना । सामान्यतः व्यक्ति सत्य और न्याय रूप धर्म को नहीं जानता । क्योंकि जहाँ से उसे पूर्ण सत्य और न्याय का ज्ञान मिल सकता है, वें हैं – ईश्वर, वेद तथा ऋषियों के शास्त्र । इन्हें जाने बिना सत्य और न्याय का ठीक-ठीक बोध किसी को नहीं होता । सत्य और न्याय-रूप धर्म को न जानने के कारण व्यक्ति उसका आचरण भी नहीं कर पाता । ईश्वर, वेद एवं ऋषि-शास्त्र ही वास्तव में प्रमाण हैं, मानने योग्य हैं, इन्हें न जानकर कोई भी व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति व कर्मों को उत्तम नहीं बना सकता ।

अर्थ का अभिप्राय है – सत्य और न्याय पूर्वक धन आदि पदार्थों को प्राप्त करना और काम का अर्थ है – सत्य व न्याय से प्राप्त धन आदि पदार्थों का सत्य-न्याय से उपभोग करना । प्रायः व्यक्ति सत्य-न्याय के अनुरूप धनादि वस्तुओं का अर्जन नहीं कर पाते और न उन प्राप्त हुए साधनों का सदुपयोग कर पाते । चाहे कुछ भी हो किन्तु ईश्वर पूर्ण सत्य और न्याय में सदैव प्रतिष्ठित रहता है । वह हमें यथावत् कर्मफल देने से कभी नहीं चूकता । इसलिए ईश्वर को सर्वोपरि जानने-मानने वाले मुमुक्षु-जन किसी भी प्राणी व मनुष्य के साथ असत्य और अन्याय का व्यवहार नहीं करते । क्योंकि वें सदा ईश्वर को देखते हैं । जबकि सांसारिक लोग 'मैं और मेरा' ही देखते हैं । 'मैं और मेरे' चाहे जैसे हों, उन्हें पसन्द होते हैं । वें इस स्व-स्वामि-सम्बन्ध-रूप मोहजाल में ही जन्म-जन्मान्तरों तक फँसे रहते हैं ।

मानव-जीवन का सबसे मुख्य लक्ष्य मोक्ष है । जिसका अर्थ है – सब दुःखों से छूटकर सदा आनन्द में रहना । जबकि संसार में कोई भी व्यक्ति और प्राणी ऐसा नहीं है कि जो दुःखी न हो और पूर्ण सुखी हो ! अपनी अविद्या के कारण व्यक्ति अनेक स्वार्थों और कर्मों का ऐसा जाल बुनता है जिसमें वह जीवनभर उलझा रहता है । एक जन्म नहीं बल्कि जन्मों-जन्मों तक वह अपनी अविद्या को नहीं देख पाता । क्योंकि उसके चित्त में इस जन्म के और पूर्व-जन्मों के अविद्या के संस्कार बहुत अधिक संचित रहते हैं जिनके अनुरूप वह अपने अनेक मनमाने प्रयोजन बनाता और उन्हें पूरा करता रहता है । जैसे कि विषयसुख-भोग आदि । यदि हम अपने मनमाने प्रयोजन बनाकर मनमाने काम करते रहेंगे तो हम अपने व दूसरों के साथ कभी न्याय नहीं कर सकते तथा स्वयं व अन्यों को सब दुःखों से छुड़ाकर आनन्दित भी नहीं कर सकते । इतना ही नहीं बल्कि बार-बार संसार में ही आकर जन्म-मृत्यु आदि दुःखों को प्राप्त करते रहेंगे !

धर्म-अर्थ-काम व मोक्ष; इन चार पुरुषार्थों में से मोक्ष सबसे अधिक परिश्रम-साध्य तथा हमारे जीवन का सबसे बड़ा प्रयोजन है । जिसकी प्राप्ति धर्म, अर्थ व काम के बिना नहीं होती । धर्म पूर्वक अर्थ आदि साधनों का काम अर्थात् सदुपयोग करने से हम मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं । मोक्ष की प्राप्ति के लिए ही पूर्व के धर्म, अर्थ और काम; यें तीन साधन हैं । इन चारों में यदि 'मोक्ष' को प्राप्त नहीं किया तो हमारा मानव-जीवन सफल नहीं होगा । बिना ईश्वर की प्राप्ति किए स्वयं को सफल मानना बहुत बड़ी भूल होगी !

वर्त्तमान समय में मोक्ष-शास्त्रों के महान् विद्वान् एवं योगी स्वामी श्री सत्यपति जी परिव्राजक ने 'मोक्ष' का जो अर्थ किया है वह अद्भुत है कि "मोक्ष 'ईश्वर' ही का नाम है । 'मोक्ष-प्राप्ति' का अर्थ 'ईश्वर की प्राप्ति' है । ईश्वर को छोड़कर अन्य किसी वस्तु, स्थिति या अवस्था को प्राप्त करना 'मोक्ष' नहीं है ! ईश्वर की प्राप्ति का अर्थ है ईश्वर से साक्षात् सम्बन्ध होना ! ईश्वर से सीधा सम्बन्ध होने पर ही हम सब दुःखों से छूट सकते हैं और सदा आनन्दित रह सकते हैं, ईश्वर को छोड़कर कोई भी व्यक्ति पूर्ण सुखी नहीं हो सकता । ईश्वर को प्राप्त करने के बाद हम जन्म-मृत्यु आदि दुःखों से मुक्त हो जाते हैं, यह कार्य केवल विरले लोगों के लिए ही नहीं है अपितु हम सबके लिए आवश्यक है !

हम सब अपने सांसारिक विचार, व्यवहार, अहंकार, कुसंस्कार, स्व-स्वामि-सम्बन्ध, स्वार्थ तथा लौकिक प्रयोजन आदि के कारण

ही दुःख एवं दुःख के कारणों को अपनाते हैं और सुख व सुख के साधनों को नहीं अपनाते । सर्वत्र व्यापक परमात्मा ही सुख और सुख का सबसे बड़ा कारण है । ईश्वर की सर्वत्र उपस्थिति को स्वीकार न करके मनमाना जीवन जीना हानिकारक है । हमारे पास जो धन, विद्या, शक्ति, सम्पत्ति, परिवार आदि सुख के साधन हैं, इन्हें अपना न मानकर ईश्वर का तथा ईश्वर-प्रदत्त मानना चाहिए और ईश्वर को सर्वत्र अपना व सबके कर्मों का साक्षी तथा सब कुच्छ का स्वामी मानना चाहिए ! तभी हम संसार के स्वामी परमात्मा से अविरुद्ध होकर उसके अनुकूल हो सकते हैं और अपने व दूसरों के सब दुःख मिटा सकते हैं, अन्यथा नहीं !

संसार में कोई भी वस्तु या व्यक्ति न तो सदा हमारे साथ रह सकता है, न हमें सब दुःखों से छुड़ा सकता है और न हमें निरन्तर सुखी रख सकता है ! ऐसा यदि कोई कर सकता है तो वह केवल एक सर्वव्यापक परमात्मा ही है । जो कि सदा सर्वत्र हमारे साथ रहता हुआ हमारे लिए भूमि, सूर्य, वायु, अन्न-जल आदि सृष्टि रचकर हमारे जीवन की निरन्तर रक्षा कर रहा है, उसे छोड़कर या भूलकर हम केवल दुःख एवं दुःखों के कारणों को ही बढ़ाते हैं । सब सुख एवं सुख के साधनों का आधार तो एक परमात्मा ही है । भले ही हम माने या न माने, जाने या न जाने किन्तु सत्य तो यही है ।

महर्षि पतञ्जलि ने हमारे व्यक्तिगत व सामाजिक धर्म को अष्टाङ्ग-योग के रूप में अधिक स्पष्टता से समझाया है । जिनका अभ्यास करने से हम जीवन में सब दुःखों से मुक्त हो सकते हैं तथा अन्य व्यक्तियों के भी सुख का कारण बन सकते हैं । ईश्वर-प्राप्ति के लिए प्रत्येक मनुष्य को साधना के अनेक स्तरों को पार करना होता है । किन्तु इसमें दो ही स्तर मुख्य होते हैं कि हमें अपनी व अन्यों की उन्नति में बाधक न बनकर साधक बनना चाहिए । जिन्हें महर्षि पतञ्जलि ने योग के आठ अङ्गों के रूप में इस प्रकार प्रकाशित किया है –

५ यम (अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी-त्याग), ब्रह्मचर्य (इन्द्रिय-संयम), अपरिग्रह (अनावश्यक-संग्रह का त्याग), ५ नियम शौच (भीतर-बाहर की पवित्रता), सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि । इन साधना के साधनों से ही मनुष्य मनुष्यत्व, आर्यत्व, देवत्व, ऋषित्व एवं परमपद-परब्रह्म को प्राप्त करता है । पातञ्जल योग का अभ्यास मोक्ष के लिए परम-धर्म (मुख्य-कर्त्तव्य) है ।

प्रायः व्यक्ति अविद्या के कारण सद्गुण-रूप धर्म से युक्त होने की बजाय दुर्गुणों से युक्त हो जाता है, शुद्ध कर्म एवं ईश्वरोपासना पूर्वक अर्थ कमाने की बजाय स्वार्थ-झूठ-छल-कपट-बेईमानी से अनर्थ का संग्रह करता है और प्राप्त साधनों का सदुपयोग करने की बजाय उनका दुरुपयोग करता है और इस अधार्मिक जीवन-शैली को अपनाकर मोक्ष की कल्पना तक नहीं कर पाता । वह तो येनकेन-प्रकारेण धन-मान-भोग को प्राप्त करना ही अपने जीवन का मुख्य लक्ष्य बनाकर चलता है । हम इस भयावह अज्ञान-अविद्या-भोग-व्याधि-अशान्ति व दुःखों के मार्ग को छोड़कर, ज्ञान-विद्या-योग-समाधि-शान्ति व नित्य-आनन्द का मार्ग अपनाएँ और मोक्ष अर्थात् ईश्वर के स्वरूप को जानकर ईश्वर-प्राप्ति को अपने जीवन का लक्ष्य बनाएँ !

महर्षि कपिल ने मोक्ष का यह स्वरूप बताया है –

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः ।

– सांख्य दर्शन १।१।।

अर्थात् तीन प्रकार के दुःखों को अत्यन्त निवृत्त करना अत्यन्त पुरुषार्थ है । 'पुरुषार्थ' का अर्थ है पुरुष अर्थात् आत्मा का, अर्थ अर्थात् प्रयोजन । अतः हमें अत्यन्त अर्थात् सबसे अधिक श्रम 'मोक्ष' की प्राप्ति के लिए करना चाहिए ।

इस तथ्य को हम इस सांख्य-सूत्र से समझ सकते हैं । हमारा मनुष्य-जन्म क्षणिक-सुखों को भोगने के लिए नहीं है बल्कि इसलिए है कि हम आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक; इन तीन तरह के दुःखों से अत्यन्त छूट जाएँ और नित्य आनन्द रूप ईश्वर को प्राप्त कर सकें ! त्रिविध दुःखों का स्वरूप इस प्रकार का हैं –

१. आध्यात्मिक-दुःख – जो दुःख हमारे अपने किसी आन्तरिक कारण से उत्पन्न होते हैं वें 'आध्यात्मिक दुःख' होते हैं । जो कि दो प्रकार के हैं – एक शरीर व दूसरे मानस । शरीर के वात-पित्त-कफ आदि में विषमता से या हमारे आहार-विहार व जीवन-शैली की अस्त-व्यस्तता से 'शरीर-दुःख' उत्पन्न होते हैं और काम, क्रोध, ईर्ष्या, राग, द्वेष आदि मनोविकारों से हमें 'मानस-दुःख' प्राप्त होते हैं ।

२. आधिभौतिक-दुःख – जो दुःख हमें मच्छर, सांप, शेर, आतंकी, अपराधी आदि हिंसक भूतों (प्राणियों व मनुष्यों) से प्राप्त होते हैं वें आधिभौतिक दुःख होते हैं ।

३. आधिदैविक दुःख – अति वर्षा, ग्रीष्म, शीत, बिजली गिरने, भूकम्प, बाढ़ आदि प्राकृतिक आपदाओं से जो दुःख होते हैं, उन्हें 'आधिदैविक दुःख' कहते हैं ।

यें त्रिविध-दुःख हमें इस संसार में जन्म लेने के बाद ही प्राप्त होते हैं । यहाँ जन्म लेने के बाद हम पूरी तरह इन दुःखों से कभी नहीं बच सकते ! हम सब यदि इनसे पूरी तरह बचना व छूटना चाहते हैं तो इसके लिए हमें अत्यन्त पुरुषार्थ करना होगा, उस अत्यन्त पुरुषार्थ को वेद आदि शास्त्रों में 'मोक्ष' कहा है ।

ईश्वर को हम सर्वत्र अनुभव तभी कर सकते हैं कि जब हम ईश्वर के स्वरूप को विशेष रूप से जानते हों ! ईश्वरानुभूति करने के लिए हमें स्वयं को ईश्वर के अनुकूल बनाना होगा ! जिसके लिए ईश्वरानुकूल सब आचरण और व्यवहार करने होंगे तथा ईश्वर के स्वरूप का विशेष ध्यान व ज्ञान प्राप्त करना होगा । हमें वेद, उपनिषद्, दर्शन एवं सत्यार्थ प्रकाश आदि ग्रन्थों में बताए गए ईश्वर के सत्य-स्वरूप का पहले शाब्दिक-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए । जैसे-जैसे हम परमेश्वर की विद्या, सत्संग, ध्यान आदि योगाभ्यास करते हैं वैसे-वैसे हम ईश्वर को विशेष रूप से जानने लगते हैं । जिससे ईश्वर में श्रद्धा बढ़ती है । इस

वैदिक योग को करने से हमारी संसार से निवृत्ति और ईश्वर में प्रवृत्ति होने लगती है ।

बिना किसी योगी गुरु के सानिध्य को प्राप्त किए कोई व्यक्ति ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता । हम ईश्वर से सम्बद्ध होने की इस योग-विद्या को श्रद्धा से ही पा सकते हैं और यह विद्या हमें ए क योग्य ईश्वर-भक्त गुरु से ही प्राप्त हो सकती है । ईश्वरोपासक गुरु की दिव्य योग प्रेरणा से ही हम ईश्वर-भक्ति की ओर उन्मुख होते हैं । अन्यथा तो संसार को ही सर्वोपरि मानते हैं ।

ईश्वर की प्राप्ति करने का अत्यन्त पुरुषार्थ हमने अब तक नहीं किया है । बाह्य भौतिक पदार्थों व विषयों की शिक्षा, धन-सम्पत्ति, सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए जैसे पुरुषार्थ किया है । उससे कहीं अधिक पुरुषार्थ ईश्वर को पाने के लिए करना होता है । ईश्वर को प्राप्त करना जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है । जिसके लिए बाह्य-वृत्ति अर्थात् धनादि साधनों का अत्यन्त संग्रह एवं भोग करना, अविद्या-राग-द्वेषपूर्ण व्यवहार, असत्य, असंयम, चोरी, अपवित्रता, असन्तोष, असहनशीलता आदि बड़े बाधक हैं । क्योंकि यदि व्यक्ति अपना सारा समय, बल और यौवन धनादि के अर्जन व उनके भोगादि करने में ही लगा देता है तो ऐसा करते हुए वह ईश्वर को कभी नहीं पा सकता ।

हमें किसी योगी सत्पुरुष के मार्गदर्शन में ईश्वर का अध्ययन, मनन, निश्चय और ध्यान करना परमावश्यक है । ईश्वर को जानने में ही हमें अपना तन, मन, समय, बल, धनादि व्यय करना चाहिए ! ईश्वरानुभूति करने के लिए ऐसा करना परमावश्यक है । योगाभ्यास करने के लिए हमें अन्तर्मुखी होना होता है । हमने सृष्टि में न जाने बहिर्मुखी होकर कितने जन्म, शरीर धारण किए होंगे और अब तक उनसे कितने कर्म किए हैं और उनके संस्कार भी बना लिए हैं और अब भी यदि सतत लौकिक-वृत्तियों से लौकिक कर्म ही करेंगे तो बारम्बार इस दुःखमय संसार में जीना-मरना पड़ेगा ! इसलिए ईश्वर प्राप्ति के लिए अपनी बाह्य-वृत्तियों को रोकना अनिवार्य है । मन की वृत्तियों, सांसारिक विचारों को रोकने पर ही योग का प्रारम्भ होता है ।

ज्ञान, कर्म व उपासना करना हमारा स्वभाव है । हम प्रतिक्षण ज्ञान-कर्म-उपासना करते हैं, हर समय कुछ न कुछ जानते, करते और किसी न किसी जड़-चेतन वस्तु के निकट रहते हैं । अब हमें देखना यह है कि हम किसे जान रहे हैं ? क्या कर रहे हैं ? और किसकी उपासना कर रहे हैं ? जड़ वस्तुओं तथा व्यक्तियों की उपासना से हमें सुख-दुःख दोनों मिलते रहते हैं जबकि ईश्वर की उपासना करने से सर्वदुःख रहित नित्य आनन्द की प्राप्ति होती है । जिस स्थायी सुख की प्राप्ति हम विषय-भोगों से करना चाहते हैं, वह नित्य सुख इन विषयभोगों में नहीं है ।

सबका जन्मदाता ईश्वर सब मनुष्यों को एक वेदमन्त्र में कह रहा है -

वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्तꣳशरीरम् ।
ओ३म् क्रतो स्मर । क्लिबे स्मर । कृतꣳस्मर ॥

– यजुर्वेद ४०.१५

अर्थात् हे कर्मशील जीव ! तू सतत गतिशील, अपार्थिव और अमर है किन्तु यह तेरा शरीर भस्म होने वाला है, नष्ट होने वाला है । तू मुझ ओ३म् को स्मरण कर ! अपने किये हुए कर्मों को स्मरण कर और मुझमें तेरा कल्याण है, तू मुझको देख !

एक अन्य वेदमन्त्र में सफल जीवन के विषय में कहा गया है -

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥

– यजुर्वेद ३१.१८

अर्थात् ईश्वर को जानने वाला ऋषि कहता है कि मैं इस महान्तम पुरुष (परमात्मा) को जानता हूँ, जैसे सूर्य अन्धकार से पृथक् है वैसे ही यह (ईश्वर) अज्ञान-अविद्या के अन्धकार से पृथक् है । इस पुरुष को जानने वाला विद्वान् मनुष्य मृत्यु का उल्लंघन कर जाता है, अन्य कोई मार्ग इस जन्म-मृत्यु से मुक्त होने के लिए नहीं है ।

यह संसार अनित्य है । इसलिए इस संसार के सभी सुख भी अनित्य हैं । इस संसार को असंख्य बार भोगकर भी कोई तृप्त नहीं हुआ है । जन्म-जन्मान्तरों से हम इन भौतिक सुखों को भोग रहे हैं किन्तु फिर भी तृप्त व पूर्ण सुखी नहीं हुए हैं । जबकि इन भौतिक सुखों से भिन्न ईश्वर का आनन्द नित्य है, सदा सर्वत्र उपलब्ध है । बस आवश्यकता है ईश्वर से योग करने की ! ईश्वर-प्राप्ति करने के लिए श्रद्धा चाहिए ! श्रद्धा का अर्थ अन्धविश्वास बिल्कुल नहीं है । श्रद्धा का अर्थ है सत्य का निश्चय । जितना हम ईश्वर के सत्य-स्वरूप को जानते रहते हैं उतनी ईश्वर में हमारी श्रद्धा बढ़ती रहती है और हमें ईश्वर का निश्चय होता रहता है । हमें ईश्वर का निश्चय तभी होगा कि जब हम शब्द तथा अनुमान प्रमाण से ईश्वर का निश्चय कर चुके हों । किसी भी वस्तु को पाने के लिए उसका सामान्य ज्ञान अनिवार्य होता है । शब्दानुमान से हमें सब पदार्थों का सामान्य ज्ञान ही होता है । विशेष ज्ञान तो वस्तु के प्रत्यक्ष होने पर ही होता है ।

किसी भी वस्तु में हमारी रुचि तभी होती है कि जब हम उसे अच्छी तरह से जानते हों । बिना जाने अनजान विषय और वस्तुओं में हमारी रुचि नहीं होती । ईश्वर में श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए पहले हमें ईश्वर के सत्य-स्वरूप को जानने तथा ईश्वर में श्रद्धा रखने वाले विद्वानों के उपदेश सुनने चाहियें । जब ईश्वर के स्वरूप को पढ़-सुनकर जानेंगे और ईश्वर के स्वरूप का चिन्तन और ध्यान करेंगे, तब हमें ईश्वर के स्वरूप का वास्तविक ज्ञान होगा । ईश्वर के अनन्त गुण, कर्म तथा स्वभाव हैं । जैसे ज्ञान, बल, आनन्द, सत्य, न्याय, दया, परोपकार आदि । हमें ऐसे दिव्य-स्वरूप ईश्वर के अनुपम गुणों को अवश्य प्राप्त करना चाहिए । इसी में हमारा पूर्ण विकास निहित है ।

ईश्वर में श्रद्धा का होना कोई साधारण बात नहीं है । ईश्वरोपासना से ईश्वर-भक्त ईश्वर के दिव्य गुणों से युक्त होने लगता है और वह भी ईश्वर के समान असाधारण और दिव्य हो जाता है । हम सभी सुविचार, सत्संग, स्वाध्याय, यज्ञ, ईश्वरोपासना आदि आत्मोद्धारक कर्म करके अपने जीवन को पवित्र एवं सफल बनाएँ ।

Gayatri Yajna 2017

Continuing with the series of the yajnas, Arya Samaj Indiranagar organized "Gayatri Maha Yajna" on 31st March, 1st and 2nd April 2017.

The program was spread over 3 sessions and evoked a large and enthusiastic participation from one and all. Below are some glimpses from the same.

Children's Program

The culmination of the Gayatri Maha Yajna on 2nd April 2017 was marked by a children's program in which many children from Arya families participated.

Children were encouraged by the audience when they recited mantras, shlokas, meaning of mantras and performed on bhajans.

सफर – देह भाव से ... ...आत्म भाव का

– डा. सुषमा गर्ग

एक बच्चा जब इस संसार में जन्म लेता है तो उसके पूरे परिवार में खुशी की लहर दौड़ जाती है। पूरा परिवार बच्चे की अच्छी से अच्छी परिवरिश की कोशिश करता है। वह स्वस्थ रहे, प्रसन्न रहे इसकी चेष्टा करता है। गरीब माँ–बाप भी अपना तन मन धन बच्चों की इच्छायें पूरी करने में लगा देतें हैं। अपनी हैसियत से बढ़ कर खर्चा बच्चों की खुशी के लिए करतें हैं।

संस्कार के नाम पर नामकरण– संस्कार, छठी, मुन्डन, जनेऊ आदि जाति–धर्म के अनुसार बच्चे के कराये जाते हैं जो मात्र कर्मकाण्ड तक ही सीमित रहते हैं। बच्चे के मन पर उनकी कोई विशेष छाप नहीं रहती। थोड़ा बड़ा होने पर बच्चे से उसके मम्मी–पापा का नाम पूछा जाता है, बच्चा अपनी तोतली भाषा में रट्टू तोते की तरह सबका नाम बताता है और सभी को अपने मोह के आकर्षण में बाँध लेता है। बच्चे की एक सांसारिक पहचान बन जाती है। थोड़ा बड़ा होने पर वह समझ जाता है कि मन लगा कर पढ़ना है और बड़े होकर खूब पैसा कमाना है। माँ–बाप भी उसे इस योग्य बनाने में अपनी पूरी शक्ति लगा देते हैं।

उसकी पवित्र आत्मा जो पिछले जन्मों के संस्कार लेकर पैदा हुई थी उस पर इस जन्म के और नये संस्कारों की पर्त चढ़ जाती है। मैली चादर कुछ और मैली होने लगती है। वह न खुद जानना चाहता है कि वह कौन है और न ही कोई उसे बताता है कि असलियत में वह कौन है। पूर्व जन्म के कुछ प्रबल संस्कारों को लेकर कुछ ऐसे भी बच्चे जन्म लेते हैं जिनके अन्दर यह जानने की प्रबल जिज्ञासा होती है कि वें कौन हैं। संसार के आर्कषण उन्हें बाँध नहीं पाते हैं। स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा बुद्ध, शंकराचार्य आदि ऐसे उदाहारण हैं जिन्हें संसार और परिवार का मोह बाँध नही पाया। अन्य सामान्य लोगों में जीवन के इस परम लक्ष्य को जानने की जिज्ञासा वाले संस्कार उतने प्रबल न होने के कारण वे अनमने भाव से संसार में रहते हैं। कभी आसक्ति, कभी विरक्ति के बीच जीवन गुजारते हैं। कुछ चिन्तन आत्मा–परमात्मा का चलता है। ऐसे मध्यम मार्गीय गृहस्थों के लिए प्राचीनतम् ग्रन्थ वेद से लेकर आजतक अनेकानेक धार्मिक ग्रन्थों एवम् ज्ञानियों द्वारा मार्ग दर्शन किया गया जिसका लाभ प्राप्त कर सुखमय मर्यादित गृहस्थ जीवन बिताते हुए आत्मिक ज्ञान में वृद्धि करते हुए वृद्धावस्था में ज्ञान सहित इस शरीर को छोड़ते हुये अपना मानव जीवन सार्थक करने वाले लोग भी हैं।

शास्त्रों में यह बात स्पष्ट रूप से कही गई है कि कोई जन्म जात ब्राह्मण नहीं होता है। ब्राह्मण बनने के लिए आत्मबल, तप–बल, और धर्माचरण की आवश्कता होती है। अतः इस अवस्था को प्राप्त करने के लिए हमें परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिये।

पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे।
अथो अरिष्टतातये॥

– अथर्ववेद ६। १९। २

हे परमात्मा ! मेरे हृदय में भक्तिभाव और कर्मण्यता का विकास हो। मुझे आरोग्य और जीवन प्राप्त हो। मुझे सभी ओर से पवित्र बनाइए।

प्राचीनतम् ग्रन्थ वेद में आत्म ज्ञान प्राप्त करने को ही जीवन का चरम लक्ष्य बताया गया है।

को ददर्श प्रथमं जायमान मस्थन्वन्तं यदनस्था बिभर्ति।
भूम्या असुरसृगात्मा क्वं स्वित्को विद्वांसमुप गात्प्रष्टुमेतत्॥

– ऋग्वेद १। १६४। १

आत्मज्ञान प्राप्त करना मानव जीवन का मूल लक्ष्य है । यह संसार कैसे बना, पदार्थ आदि का कारण क्या है ? शरीर और उसमें शोणित माँस-अस्थि आदि की विचित्रता और उसकी आत्मा से विलगता आदि का ज्ञान मनुष्य को अवश्य प्राप्त करना चाहिये ।

महाभारत के युद्ध के समय अर्जुन के मन में उत्पन्न संशयो का निवारण करते हुए भगवान् कृष्ण ने भाँति-भाँति से आत्म-ज्ञान देकर अर्जुन को भय रहित किया ।

स्थूल देह और सूक्ष्मतम आत्मा के मध्य सूक्ष्म मन होता है । अशान्त और मलिन मन इस देह से आत्मा की पहचान की यात्रा में तूफान का कार्य करता है, जबकि साफ और शान्त मन सेतु का कार्य करता है । मन की सत्ता अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा सरल से सरल और जटिल से जटिल है । बुद्धि-विवेक की लगाम द्वारा जब इसे काबू में रख कर इससे काम लिया जाता है तो वह महान् कार्य करता है । किन्तु यदि इस पर काबू न किया गया तो यह विध्वंसक हो जाता है । अतः बुद्धि-विवेक की लगाम द्वारा किस तरह मन को काबू में रखना है, उसे साफ और शान्त करना है । इसका मार्ग-दर्शन ज्ञानियों तथा ग्रन्थों से प्राप्त कर मनुष्य अपने मन को इस यात्रा के अनुकूल बना सकता है ।

वेद में भी स्वच्छ तथा धर्म और सदाचरण से पवित्र मन को ही ब्रह्मविद्या प्राप्त करने का अधिकारी बताया गया है ।

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन प्रतिष्ठिता रथनाभविवाराः ।
यस्मिँश्चित्तँ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ॥

– यजुः ३४।६।

हे मनुष्यों ! तुम्हारा मन स्वच्छ हो । अन्तःकरण धर्म और सदाचरण से पवित्र हो ताकि ब्रह्मविद्या और व्यवहारिक ज्ञान उपलब्ध कर सकें ।

मन अत्यन्त सूक्ष्म एवम् बलवान् है । उन्मत्त हाथी को काबू में करना जितना कठिन है उतना ही कठिन मन को काबू में करना है । इन्द्रियाँ घोड़े के समान हैं जो मन रूपी हाथी का बल पा कर बहुत तेजी से दौड़ने लगती हैं । कुशल महावत और कुशल सारथि जिस तरह इनका बल सही दिशा में लगाते हैं, उसी तरह बुद्धि-विवेक अपनी लगाम द्वारा इन्हें सही दिशा में लगाती है ।

बुद्धि को जब ज्ञान द्वारा विवेक की प्राप्ति होती है तभी वहाँ इन पर काबू कर पाती है, जबरदस्ती नियन्त्रण करने का कोई लाभ नहीं है । उसे कैसे सात्विक रस चखना है, उस रस का स्वाद पैदा करना है, कैसे धैर्य धारण करना है, यह विवेक से ही जाना जा सकता है । आत्मनिरीक्षण भी मन की जटिलताओं को कम करने में अत्यन्त सहायक होता है । जैसे शैतान बच्चा निरीक्षक की कड़ी नजर से समझ जाता है कि वह गलती कर रहा है, वैसे ही बुद्धि रूपी निरीक्षक की कड़ी नज़र से समझ जाता है कि वह गलती कर रहा है वैसे ही बुद्धि रूपी निरीक्षक जब मन का निरीक्षण करता है तो मन की वह ग्रन्थि जो जन्म-जन्मान्तर से पड़ी है ढीली होकर खुल जाती है और धीरे-धीरे मन शान्त, सरल और साफ होने लगता है । अतः कुछ समय मन के निरीक्षण के लिये अवश्य निकालना चाहिये । फिर आदत पड़ जाने पर हर समय मन बुद्धि के निरीक्षण में रहने लगता है ।

गीता के विभिन्न अध्यायों में मानव जीवन के समस्त क्षेत्रों की व्याख्या कर कैसे हम उन्हें जानकर उनका निरीक्षण कर सकते हैं, इसकी चर्चा हुई है । वेद में इस मन्त्र में बताया गया है कि आत्मा किस प्रकार मल-विक्षेप आवरण रहित बने इसके अनेक उपाय वेदों में वर्णित हैं । अतः वे पठनीय हैं ।

ये देवा पवित्रेणान्मनं पुनते सदा ।
तेन सहस्त्रधारेण पावमानीः पुनन्तु नः ॥

– सामवेद १३०२

जब भटकता हुआ प्राणी समझ लेता है कि मैं आत्मा हूँ शरीर नहीं तभी उसमें आत्म बल का संचार होता है । यही शक्ति उसे मानसिक दोषों को त्यागने की सामर्थ्य प्रदान करती है ।

जो ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो गये हैं ऐसे विद्वानों का कर्त्तव्य है कि वे अपने यजमानों तथा समाज के नागरिकों को सही दिशा में कर्मशील बनने की प्रेरणा दें ।

उत्तिष्ठ ब्रहमणस्पते देवान यज्ञेन बोध्य ।
आयुः प्राणं-प्रजां पशून् कीर्तिं यजमानं व वर्धय ॥

– अथर्ववेद ९।६३

अर्थात् ब्राहमाणों को चाहिये वे स्वयं सावधान रहकर अपने यजमानों को दुष्कर्मों की ओर जाने से रोके जिससे सबका कल्याण हो और सबमें आयु, प्राण, धन-धान्य, कीर्ति, सुख-शान्ति की वृद्धि हो ।

माता-पिता को भी अपने बच्चों को अच्छे संस्कार देने के लिये अवश्य समय निकलना चाहिये । उन्हें जोर जबरदस्ती से नहीं वरन् सहजता के साथ ऐसी जगहों में ले जायें जहाँ उनमें कुछ अच्छे संस्कारों के बीज पड़े । अनुकूल समय और परिस्थिति आने पर सभी के अन्दर पड़े ये बीज प्रस्फुटित होंगे । बच्चों को सांसारिक आकर्षण इतना लुभाते हैं कि सहज ही वे उस ओर खिचें जाते हैं पर आप उन्हें आध्यात्मिक स्थलों में अवश्य ले जायें । वे अवश्य वहाँ से कुछ न कुछ ग्रहण करेगें ।

Arya Samaj Indiranagar
7 CMH Road, Indiranagar, Bangalore 560 038 | Phone 25257756, 25294918, 9844625085
asmiblr@gmail.com | www.aryasamajbangalore.org

Appeal for Donation towards New Arya Samaj Building

Namaste Arya Bandhu,

Arya Samaj Indiranagar Bangalore has progressed on implementing the long pending plans to expand its building for the twin purposes of expanding Arya Samaj activities and spreading Vaidic knowledge to the larger public of South India. The vision of the founders of Arya Samaj Indiranagar to make it the prominent center for Ved Prachar and spread the message of Maharishi Dayanand Saraswati in South India is slowly coming to fruition.

The master plan is to construct ~30,000 sq. ft. across 4 floors. The master plan includes

- Vaidic Literature Center where all type of Vaidic literature is readily available for all
- Ayurveda Center for Ayurvedic medicines and Naturopathy consultations
- Yoga center for spreading the knowledge of Patanjali's Yog Darshan
- Vaidic school for teaching and spreading Vaidic knowledge
- Residence for purohits and scholars
- Guestrooms for visitors to Arya Samaj
- Auditorium for discourses and cultural programmes
- Yagya Shala - big (for weekly) and small (for daily)
- Dining Hall with servery
- Basement Parking for 2 & 4 wheelers
- Wheelchair friendly with elevator and ramps
- Hygienic toilets on every floor with easy access
- Rainwater harvesting, solar panels and other eco-friendly features

A big Yagya shala is planned on the terrace with a pyramid roof and in accordance with Vaidic norms for the yagya to benefit the environment as ordained by Maharishi Dayanand.

Adherence to all norms/byelaws such as rainwater harvesting, waste management/recycling, water recycling etc. have been planned. Also, wherever possible, we are using green technologies in construction and maintenance to reduce our carbon footprint.

Your Samaj has been working to fulfil this vision, and towards this, the building construction is in full swing with the East Wing outer structure almost complete. The foundation work for the rear section of the West Wing has started.

Above all, this noble work needs your wholehearted support. This herculean task can't be completed without support from each one of you. Please come forward and provide your support in whatever way you can. We need big funds and man-power (Tan-man-dhan se yogdaan dijiye).

DONATION DETAILS

Please do donate generously for this noble cause and help Arya Samaj Indiranagar to propagate the message of Maharishi Dayanand "Back to the Vedas" & "Krinvanto Vishwam Aryam". The new building will be driven by our motto - Spread Vaidic knowledge (Ved Prachar) and keep the Aum flag (Aum Dhwaj) flying high. It will always be reverberating with Aum (Ishwar Dhwani).

We have an estimated construction cost of ~ Rs 2,000/- per sq. ft. To make it easier, for donations, you can donate for one sq. ft. or multiples thereof.

For larger donations we have the following categories. The names of the donors will appear as a Roll of Honour on the Wall of Fame in the new building:-

Category	Donation Amount (in Rupees)
Platinum	5,00,000
Gold	2,50,000
Silver	1,00,000
Bronze	50,000

There is also an option for sponsoring complete rooms or halls or even floors and blocks which will be prominently named after the donor with a permanent stone plaque embedded in the wall. Please contact the Samaj office to know the donation amount towards complete rooms or halls.

Please come forward for the cause of Arya Samaj movement and donate generously.

Monetary donations can be made by cash or cheque or NEFT/RTGS in favour of "Arya Samaj Civil Area Bangalore Trust". **Tax Benefit under section 80G is available for all donations.**

Bank Details for NEFT/RTGS are as below -

Bank	ICICI Bank	Vijaya Bank
Branch	Indiranagar, Bengaluru	Indiranagar, Bengaluru
IFSC Code	ICIC0000169	VIJB0001301
Account Number	016901020741	130101010007367
Account Name	Arya Samaj Civil Area Bangalore Trust	

Please come forward for the cause of Arya Samaj movement and donate generously.

For Arya Samaj Civil Area Trust

Himanshu K Agarwal, Hon. President

Narendra Arya, Hon. Treasurer

For Arya Samaj Mandir

Harsh Chawla, Hon. President

Sandeep Mittal, Hon. Secretary

ARYA SAMAJ INDIRANAGAR

MANDIR OFFICE BEARERS

PRESIDENT
Smt. Harsh Chawla – harshsuraj@hotmail.com

VICE PRESIDENT
Smt. Sneh Lata Rakhra

VICE PRESIDENT
Sh. Narendra Arya – narendra.arya@gmail.com

SECRETARY
Sh. Sandeep Mittal – sandeepmittal5@gmail.com

TREASURER
Sh. Amar Sharma – amarpita13@gmail.com

JOINT SECRETARY
Sh. Ravi Ochani – ravi.ochani@gmail.com

EDITOR
Smt. Harsh Chawla

TRUST OFFICE BEARERS

PRESIDENT
Sh Himanshu Aggarwal

SECRETARY
Sh Vivek Chawla

TREASURER
Sh Narendra Arya

ACKNOWLEDGEMENT
Vaidic Dhwani acknowledges with thanks the Hindi typesetting by Dr. Arun Dev Sharma and the layout design by Sh. Yashodhara S and Sh. Raghavendra T

ARYA SAMAJ MANDIR
7 CMH Road, Indiranagar,
Bangalore 560 038
Phone 2525 7756
asmiblr@gmail.com
www.aryasamajbangalore.org

Like us @ www.facebook.com/asmiblr
Join our Facebook group - "Arya Samaj Indiranagar Bangalore" for regular updates

Cover Page Mantra has been taken from Rigveda and checked by Dr. Arun Dev Sharma

Vaidic Dhwani is a quarterly newsletter published by Shri Sandeep Mittal of Anutone Acoustics Limited, for and on behalf of ARYA SAMAJ MANDIR INDIRANAGAR (ASMI), mailed free of cost to members and interested individuals. It is for private circulation only. To request a copy, simply mail us your complete postal address. *Vaidic Dhwani* is also available on the ASMI website **www.aryasamajbangalore.org**
Views expressed in the individual articles are those of the respective authors and not of ASMI. No part of this publication may be reproduced stored in a retrieval system, scanned or transmitted in any form or by any means electronic, photocopying, recording or otherwise, without the prior written permission of ASMI.

SERVICES OFFERED

SAMAJ CONDUCTS AT MANDIR

- **Daily Havan** from 7.30 to 8.00 am
- **Weekly Satsang**
  comprising havan, bhajans and discourses every Sunday from 10 to 11.45 am. Every last Sunday of the month, the programme extends to special discourse and Preeti-bhoj.
- **Annual Festivals - Varshikotsav, Vaidikotsav and Gayatri Maha Yajna**
  2-3 days programmes of havan, Bhajans and discourses on Vaidic philosophy by renowned scholars are conducted thrice a year.

SAMAJ CONDUCTS AT MANDIR OR YOUR VENUE

Namkaran & Annaprashan
- naming & first grain

Mundan & Upanayan
- head shaving & thread

Vivah - marriage with certificate valid in court of law

Griha Pravesh - house warming

Antyeshti - funeral rites

Shudhdhi - reversion from other faiths to Vaidic dharma with certificate valid in court of law

Havan - for any ceremony on any occassion, at any place

Contact
1) Smt Harsh Chawla 99726 14241
2) Pandit Brij Kishor Shastry 97410 12159
3) Pandit Arun Dev Sharma 98446 25085

YOGA & PRANAYAM

- **Yoga** (Evening) - 45 days
  Time : Every Mon/Tue/Thu/Fri - 7.00 - 8.30 pm
- **Pranayam** - 11 days
  Time : Mon to Sat - 6.00 - 7.15 am (Morning)
  & 7.00 - 8.30 pm (Evening)
  Venue : Basement Hall
  Sri Nanjunde Gowda 98458 56204

MEDITATION

Manasa Light Age Foundation - Starting from first Wednesday of every month and every Wednesday
Time : 7 - 8 pm
Venue : Arya Samaj
080 28465280, 9900075280

MUSIC

- **Vocal**
  Time : Sat & Sun 2 - 4 pm
  Smt Seethalakshmi 96200 56218
- **Kathak Dance**
  Time : Sat 12 - 2 pm & Sun 7 - 8.30 pm
  Smt Lakshmi Praroha 98447 31615
- **Instrumental Music**
  Time : Tue & Sat 4.30 - 7.30 pm
  Sri N K Babu 98441 22738